आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते हिन्दी के कदम

प्रो0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र.

शोध सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भाषा की प्रतिष्ठा केवल उस भाषा को बोलने वालों की संख्या पर आधारित नहीं होती है वरन इसके लिए अनेक प्रतिमान निर्भर करते हैं। हिन्दी भाषा का जो सबसे महत्वपूर्ण गुण, और वह है इसकी सरलता और आसानी से उपलब्धता। इसलिए हिन्दी की महत्ता में और इजाफा हो जाता है। इसकी अखंडता और प्रगाढ़ हो जाती है जब हिन्दी की सरलता के साथ–साथ हिन्दी की आसान पहुँच, उपलब्धता भी जुड जाती है जो इसके वैश्विक रूप को आलंबन देती है।

बीज शब्द– *हिन्दी, राष्ट्रभाषा हिन्दी, संपर्क भाषा और आत्मनिर्भरता।*

विश्व के सबसे बड़े प्रजातांत्रिक देश की भाषा हिन्दी है। हिन्दी भारत के विशाल जनसमूह द्वारा बोली और समझी जाती है। इसके महत्व को इस तथ्य से भली–भाँति समझा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य नवजागरण के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था–निज भाषा उन्नहि अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।। यहाँ निज भाषा का अर्थ मातृभाषा है। हिन्दी के विकास का प्रारंभ आदिकाल में बोली के रूप में होता है। भाषा के विकास का सोपान बोली, उपभाषा तथा भाषा है।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं जिनमें मारवाड़ी, कौरवी, ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ हैं तथा राजस्थानी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी उपभाषाएँ हैं। व्यापक अर्थ में ये सभी हिन्दी में समाहित हैं। इस प्रकार हिन्दी उस भाषा का नाम है जो अनेक बोलियों के रूप में उत्तर भारत और मध्य देश की जनता की मातृभाषा है। समय–समय पर यह विभिन्न नामों से अभिहित होती ही है। कई बोलियों और उपभाषाओं से प्रभावित होने के कारण इसका स्वरूप समन्वयात्मक है।

प्रकृति में यह एक रचनात्मक भाषा है। जब यह कहा जाता है कि 'देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी है' और 'संघ की राजभाषा हिन्दी है' इसका तात्पर्य केवल परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी से है, परन्तु हिन्दी का अर्थ और भी व्यापक है। इसे केवल खड़ी बोली तक ही सीमित नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार का जो 15 वर्ष का समय दिया था, वह धीरे–धीरे 'थोपे न जाने' के नाम पर अनिश्चित काल तक के लिए बढ़ा दिया गया। जबकि सम्प्रति विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का व्यापक प्रयोग होता है, जैसे–''मारीशस में प्रवासी भारतीयों का देश की जनसंख्या का प्रतिशत 68.3, गुयाना में 43.5, त्रिनिदाद में 40.2, सूरीनाम में 27.4, फीजी में 40 प्रतिशत है।'' इसी प्रकार ''अमरीका में बसे प्रवासी भारतीयों का प्रतिशत 1.0, कनाडा में 3.54, इग्लैंड में 2.3, जर्मनी में 0.94,

फ्रांस में 0.1, नीदरलैण्ड में 0.17, आस्ट्रेलिया में 2.0, न्यूजीलैण्ड में 2.16 है।'' यह आँकड़े थोड़े पुराने हैं लेकिन इन देशों के प्रवासी भारतीय 'हिन्दी' को अपनी अस्मिता का प्रतीक मानते हैं, वे भले ही भारत की अन्य भाषाभाषी ही क्यों न हों? इस सबके बावजूद सच्चाई यह है कि हिन्दी अभी भी भारत में राष्ट्रभाषा नहीं बन पायी है, वह भले ही विश्व में बोली जाने वाली दूसरी भाषा क्यों न हो। इसके राष्ट्रभाषा न बन पाने के अनेक कारण हैं। जब तक ये कारण बने रहेंगे तब तक भारत की राष्ट्रभाषा की समस्या का समाधान संभव नहीं है।

हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा 'राजनीतिक वैषम्य' है। वास्तव में यही मूल कारण है जिससे सन् 1947 ई0 में राष्ट्रभाषा का प्रश्न अनिर्णीत रह गया। उस समय जब महात्मा गाँधी जी ने हिन्दुस्तानी का प्रश्न उठाया तो सम्पूर्ण हिन्दी समर्थकों ने इसका समर्थन किया किन्तु अब्दुल हक और मुस्लिम लीग ने उर्दू का पृथक् स्वरूप बनाये रखने पर बल दिया क्योंकि हिन्दुस्तानी को देवनागरी लिपि में मान्य किया जा रहा था। इसी समय से उर्दू को जानबूझकर फारसीमय किया जाने लगा है। इसके कारणों की पड़ताल करते हुए प्रो0 गोविन्द सिंह ने अपने लेख 'हिन्दी विरोध की सस्ती राजनीति' में स्पष्ट किया है– ''हिन्दी मजहब के बजाय भूगोल की द्योतक ज्यादा रही है। उसे हिन्दुस्तानी लोगों की भाषा कहना ज्यादा प्रासंगिक है। दुर्भाग्य से औवैसी उन अंग्रेजों की बोली बोल रहे हैं जिन्होंने हिन्दी–उर्दू के मजहबी आधार पर फूट डालने का काम किया था। सन् 1842 ई0 से पहले संयुक्त प्रान्त की राजभाषा फारसी हुआ करती थी। अंग्रेजों ने पहले हिन्दी और उर्दू दोनों को राजभाषा का दर्जा दिया, फिर कुछ वर्षों बाद दोनों के बीच फूट डालने के मकसद से सिर्फ उर्दू को राजभाषा बना दिया। इससे दोनों के बीच झगड़ा बढ़ गया। धीरे–धीरे उन्होंने यह स्थापित कर दिया कि हिन्दी और उर्दू का रिश्ता, हिन्दू और मुस्लिम समुदायों से है।'' जबकि वास्तविकता यह है कि हिन्दी–उर्दू के मध्य किसी प्रकार का कोई झगड़ा ही नहीं है क्योंकि लिपियाँ भाषा नहीं हैं अपितु वे भाषा की अभिव्यक्ति का एक माध्यम भर हैं। आज भारत का प्रत्येक मुसलमान अपने–अपने राज्यों की क्षेत्रीय भाषाओं को अपना चुका है किन्तु कतिपय इस्लामी संगठन 'हिन्दी विरोध' के नाम पर वितण्डा खड़ा करते हैं।

राष्ट्रभाषा के समक्ष दूसरी चुनौती 'अंग्रेजीपरस्तता' है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्चवर्ग सत्ता के प्रमुख प्रतिष्ठानों पर जम गया। ये अंग्रेजीदां बुद्धिजीवी परतंत्रता के समय अनवरत अंग्रेजों के भक्त रहे और जब स्वतंत्रता के पश्चात् 15 वर्षों तक अंग्रेजी के बने रहने का निर्णय लिया गया तो इस नीति का लाभ इन्होंने अंग्रेजी को प्रोत्साहन देने में लगाया। इनकी अंग्रेजी भक्ति के कारण ही हिन्दी के प्रचार–प्रसार की जितनी भी नीतियाँ बनायी गयीं, वे परवान नहीं चढ़ पायीं। सरकारी प्रश्रय में मातृ भाषाओं के मुकाबले अंग्रेजी को इस तरह बढ़ावा दिया गया कि जनता को इस अस्वाभाविकता का पता ही न चल पाये। इस सम्बंध में प्रो0 गिरीश्वर मिश्र का प्रस्तुत कथन प्रासंगिक है– ''अंग्रेजी का वर्चस्व हमारी नियति के साथ ऐसा जोड़ा गया है कि उसका कोई विकल्प ही न रहे। हम लाचार होकर उसी का प्रयोग बनाये रखने पर विवश हो गये और इस फांस से निकलने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है न्यायपालिका का ही उदाहरण लें। आज भी उच्च और उच्चतम न्यायालय के लिए कानूनी कार्रवाई अंग्रेजी में ही करने की बाध्यता है। लोकतंत्र की आत्मा के विरुद्ध इस व्यवस्था में न्याय पाना पक्षपातपूर्ण है, जो सबकी पहुँच में भी नहीं है।'' यही नही देश की सबसे बड़ी व प्रतिष्ठित 'संघ लोक सेवा आयोग' की परीक्षाओं में तो ये अंग्रेजीदां कुछ ज्यादा ही कमाल करते हैं, अपने अंग्रेजी के 'सुलभ' ज्ञान का। एक बानगी देखिये, प्रतियोगी परीक्षाओं में हिन्दी भाषा ज्ञान

को जाँचने–परखने के लिए एक प्रश्नपत्र होता है, जिसमें ''कुछ इस तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं–(1) निम्न शब्दों के अर्थ समझाएँ–बहुशाखन, प्रायिकता, वृत्तिकसेवा, अवक्रमण, प्रतिच्छेदन–स्थल, सुप्रचालनिका एवं अभिसमय । (2) 'पिछड़े क्षेत्रों में बड़े उद्योगों का विकास करने में सरकार के लगातर अभियानों का परिणाम जनजातीय जनता और किसानों, जिनको विस्थापनों का सामना करना पड़ रहा है, का विलगन है।' इसका अंग्रेजी में अनुवाद कीजिए।'' ऐसे ही अनेक प्रश्न मात्र हिन्दी का व्यावहारिक कौशल जानने के लिए पूछे जाते हैं। क्या किसी हिन्दी भाषा के मर्मज्ञ विद्वान का पाला कभी ऐसी 'सरल' हिन्दी से पड़ा है? यह कैसी हिन्दी है? कहाँ पढ़ायी जाती है ऐसी शब्दावली? यह हमारे नौकरशाहों की अंग्रेजी परस्तता है जिसके कारण वे हिन्दी को अंग्रेजी से कठिन प्रस्तुत करना चाहते हैं इसलिए वे जानबूझ कर दुरुह एवं दुर्बोध शब्दाबली प्रयोग करते हैं।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के समक्ष एक अन्य चुनौती 'राजनीतिक समस्या' है। वास्तव में हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने के मार्ग में जितनी भी समस्याएँ हैं, उनका मूल कारण राजनीति ही है। यदि सत्तापक्ष हिन्दी के प्रचार का प्रयास करता है तो विपक्ष उसके विरोध की नीति अपना लेता है। भाषा को राजनीति से जोड़ने का प्रयास डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी के बंगाल विधान सभा का अध्यक्ष बनते ही प्रारम्भ हो गया था। कालान्तर में तमिलनाडु में 'द्रविड़ मुनेत्र कषगम' को हिन्दी विरोध के नाम पर सत्ता मिली, फलतः पूरे तमिलनाडु में हिन्दी विरोध राजनीति का केन्द्र बन गया है। यद्यपि वहाँ सामान्य जनता में हिन्दी का प्रचार–प्रसार बढ़ रहा है, हिन्दी फिल्में वहाँ अत्यन्त लोकप्रिय हैं तथापि वहाँ के दोनों राजनैतिक दल अंग्रेजी को प्रश्रय देते हुए हिन्दी विरोध में लगे हैं। वास्तव में वे हिन्दी विरोध द्वारा जनता का ध्यान विकास से हटाकर अपनी राजनैतिक रोटियाँ सेकते हैं। केन्द्र में जब–जब कांग्रेस विपक्ष में होती है तब–तब उसके कुछेक सांसद भी हिन्दी विरोध शुरू कर देते हैं। वर्तमान में भी जब हिन्दी दिवस के मौके पर गृहमंत्री ने 'अपनी मातृभाषा के साथ हिन्दी को अपनाने' की बात की तब स्टालिन, कुमारस्वामी, ममता बनर्जी और असदुदीन ओवैसी आदि ने अपनी राजनीति चमकाने के लिए हिन्दी विरोधी कुत्सित् प्रयास शुरू कर दिए। इस सम्बन्ध में प्रो0 गोविन्द सिंह कहते हैं– ''दर असल भाषा पर राजनीति करने वाले नेता और अंग्रेजीदां बुद्धिजीवी लगातार यह भ्रम फैलाते रहे हैं कि हिन्दी आ जायेगी तो अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ विलुप्त हो जायेंगी जबकि हिन्दी का झगड़ा इन भाषाओं से है ही नही उसका झगड़ा तो अंग्रेजी की अवैध सत्ता से है। जो सात दशकों से कब्जा जमाऐ हुए है।'' हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के सबसे प्रबल पक्षधर महात्मा गाँधी जी थे। आज जब हमारे देश में उनकी 150 वीं जयंन्ती मनाने की तैयारियाँ हो रही हैं, तब भाषा के लंम्बित मुद्दे का समुचित समाधान उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

आज हिन्दी सम्पूर्ण विश्व की संपर्क भाषा के रूप में आगे आ रही है। जितनी भी भाषाओं के संपर्क से हिन्दी भाषा गुजर रही है, उन सभी भाषाओं के शब्दों को बिना किसी संकोच के हिन्दी भाषा ने अपनाया है। यह एक विशेष गुण है जो हिन्दी भाषा को अन्य भाषाओं की अपेक्षा अलग अस्तित्व प्रदान करता है। हिन्दी प्रेम की भाषा है, ह्रदय की भाषा है। हिन्दी विष्व की जनता को आपस में एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखती है। जिस प्रकार भारत की राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने में हिन्दी ने लोहे की जंजीर का काम किया है। उसी प्रकार विश्व भाषा बन कर विश्व शान्ति एवं वैश्विक एकता को बनाये रखने में सक्षम है। हिन्दी हमारी संस्कृति है, जिसने विश्व स्तर पर भारत की शान बढ़ाई है और बसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श प्रतीक बन रही है। डॉ0 बी0 जय लक्ष्मी ने हिन्दी विश्व की संभावनाओं के संदर्भ में लिखा है – ''हिन्दी भाषा

का प्रसार अब किसी के रोके से रूकने वाला नहीं है, अब तो भूतल से लेकर वायु, जल तथा अंतरिक्ष में भी हिन्दी भाषा कल्पना चावला तथा सुनीता विलियम्स के माध्यम से पहुच चुकी है। अब समूचे भूमण्डल तक इसका विस्तार ग्रहण करना सुनिश्चित है। अब हिन्दी के व्यापक स्वरूप को सीमित नहीं किया जा सकता। हिन्दी का संचार अब संचार की हिन्दी का दायरा बन चुका है।'' हिन्दी के अपार विस्तार और दुतगामी प्रगति से भी इस संभावना की पुष्टि होती है। हिन्दी का स्वरूप सम्पूर्ण संसार में विकसित हो रहा है। विष्व के अनेक देषों के अनेक विश्वविद्यालय हिन्दी भाषा को अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर उसके अध्यापन की योजना बना रहे हैं। आज हिन्दी विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है।

अपने वृहद अध्ययन में सुप्रसिद्ध भाषा चिन्तक डॉ0 उदय नारायण सिंह ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ''आज संसार में कुल छह हजार भाषाएँ हैं–इनमें से मात्र एक सौ भाषाएँ हैंय जिन्हें पृथ्वी के 95 प्रतिशत लोग बोलते हैंय और उनमें से आधे लोग सिर्फ पाँच भाषायें ही बोलते हैं– चीनी, अंग्रेजी, स्पेनिश, रूसी और हिन्दी।'' यह हिन्दी के लिए कम गर्व की बात नहीं हैय जहाँ विश्व की अनेक छोटी भाषायें क्रमशः विलुप्ति के कगार पर हैं और हजारों भाषाएँ नष्ट हो चुकी हैं, हिन्दी का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। पर इसके लिए सरकार की ओर से कोई कारगर प्रयत्न नहीं किए जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में प्रो0 ए0 अरविन्दाक्षन के विचार महत्वपूर्ण हैं, ''हिन्दी को जो अर्हता प्राप्त हुई है, उसके भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारण हैं, जिनको नजरन्दाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह भी सच है कि हिन्दी को विश्व–भाषा के रूप में परिकल्पित करने के स्वप्न में मगन होने से कोई फायदा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ में यह देखना आवश्यक है कि अन्य भाषाएँ किस तरह से स्वीकृत हुई हैं, और अब तक हिन्दी स्वीकृत क्यों नहीं हुई है। स्वीकृति के मानक, प्रतिमान कौन–कौन से हैं? सरकार को इस दिशा में कौन–कौन सी कार्रवाइयाँ करनी हैं।''

फिलहाल तो भी स्थितियाँ जिम्मेदार रहीं हों पर वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी की दशा और दिशा और बेहतर हो इसके लिए हमें हिन्दी को आर्थिक, राजकीय, सामाजिक, वैचारिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में सर्वसमावेशी भाषा बनाना होगा। डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव का कहना है कि, ''हिन्दी की यह त्रासदी है कि जो सरकारी कृत्रिम अनुवाद बोझिल संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बन रही है, जिसे मानक बनाकर सत्ता प्रतिष्ठानों द्वारा पेश किया जा रहा है, वह हिन्दी उस अर्थ में नहीं है जिसमें यह सहज वाणी पाती है।''

हिन्दी को आजीविका की भाषा कैसे बनाएँ? इस बात पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो यह कहा सकता है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन्हीं भाषाओं का वर्चस्व है जो व्यावसायिकता में सबसे आगे हैं। उनमें उस समाज की संवेदना, संस्कृति और सामाजिकता की अभिव्यक्ति कितनी सशक्त हुई है, ये बातें गौण हो गई हैं। संस्कृत और ग्रीक– जैसी भाषाएँ, जिनमें आज भी साहित्य और ज्ञान राशि का सबसे समृद्ध भण्डार है, व्यावसायिकता की दृष्टि से अप्रासंगिक होती जा रही हैं। कारण, आज के आम आदमी के सामने रोजी–रोटी का संकट इतना बड़ा है कि उसके पेट को जो भाषा रोटी दे सकेगी, वही भाषा उसके लिए महत्वपूर्ण होगी। इसी तरह पूँजीपतियों और व्यवसायियों के लिए व्यावसायिकता का दबाव इतना बड़ा है कि उसे जिस भाषा में अपने व्यावसायिक हित दिखाई देंगे, वह उन्हीं भाषाओं को बढ़ावा देगा।

इस हक को हिन्दी पूरा करती है क्योंकि हिन्दी भारतवर्ष के एक बहुत विशाल प्रदेश की साहित्य भाषा है। राजस्थान और पंजाब राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर बिहार के पूर्वी सीमान्त तक तथा उत्तर प्रदेश के उत्तरी सीमांत से लेकर मध्य प्रदेश के मध्य तक के अनेक राज्यों की

भाषा है। डॉ0 मलिक मोहम्मद ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को उद्धृत करते हुए कहा है कि वस्तुतः हिन्दी शब्द उतना एक भाषा के अर्थ में व्यवहृत नहीं होता जितना एक परम्परा के अर्थ में होता है। इस प्रकार हिन्दी भारतीय संस्कृति की वाहिका है।

हिन्दी में साहित्यिक कार्य व्यापक अर्थ में हुए हैं, मध्यकाल से लेकर आज तक हिन्दी के क्षेत्र में व्यापक विकास हुआ है। दूसरी भाषाओं से विपुल अनुवाद हुआ है। राजभाषा के रूप में इसका प्रयोग भी हो रहा है। तुलसी, सूर, कबीर, पन्त, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, प्रेमचन्द, आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी की महान रचनाएँ इस भाषा में हुई हैं।

हिन्दी भाषा अनेक भाषाओं के समन्वय से समृद्ध हैं। इस भाषा के बोलने वालों की संख्या चीनी और अंग्रेजी को बोलने वालों को छोड़कर विश्व में सर्वाधिक है। उसकी लिपिदेव देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि है। इसका स्तर अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का है, यह मारीशस, सूरीनाम, गुयाना, फिजी में बोली जाती है। सारी विशेषताओं के बावजूद हिन्दी को वह स्थान पा सकी है जिसकी वह हकदार है। सांस्कृतिक समृद्धि, विशिष्ट भाषायी आकर्षण के होते हुए भी उसे उसका अभीप्सित स्थान क्यों नहीं मिल सका है वह आज भी चिन्ता का विषय है।

वास्तविकता यह है कि हिन्दी को स्वतंत्रता के पश्चात पर्याप्त राजकीय संरक्षण नहीं मिला है। मात्र दिखावे के रूप में हिन्दी को बढ़ावा देने का काम किया गया है। समय के साथ हिन्दी के लिए परिस्थितियॉ कभी अनुकूल नहीं रहीं हैं। रहीस सिंह ने 2009 में कहा था कि हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए अकादमी और संस्था खोले बैठे लोगों की मठाधीशी ने हिन्दी का बहुत अहित किया है। येन–केन प्रकारेण पुरस्कारों के लेन–देन के खेल ने न केवल हिन्दी की गरिमा का क्षरण किया, वरन् हिन्दी साहित्य को आम आदमी के चित्त से उतार दिया।

लगभग 98 प्रतिशत देशवासी अपनी भाषा में मतदान करते हैं, लेकिन संसद की कार्यवाही गुलामी की भाषा में देखने, सुनने को मिलती है। उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय गुलामी की भाषा में अपनी बात कहनी पड़ती है। आर्थिक क्षेत्र में वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण के कारण आज वैश्विक मुद्रा और वैश्विक भाषा की आवश्यकता महसूस होने लगी हैय और अघोषित रूप से यह कार्य डॉलर और अंग्रेजी के माध्यम से सम्पन्न भी हो रहा है, बावजूद इसके रूसी, चीनी और जापानी ऐसी भाषाएँ हैं जो अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान, तकनीक और व्यावसायिकता के क्षेत्र में अंग्रेजी को टक्कर दे रही हैं। इन देशों में विकसित किसी भी तरह के तकनीकी ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमें उनकी भाषा सीखनी पड़ती है, वह अंग्रेजी में उपलब्ध नहीं होता जबकि हमारे देश में इस तरह का समस्त ज्ञान या शोध कार्य सिर्फ अंग्रेजी में उपलब्ध होता है, यहाँ तक कि विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, कानून, वाणिज्य, मानविकी और कृषि विज्ञान के विषयों में उच्च स्तर का पाठ्यक्रम सिर्फ अंग्रेजी में उपलब्ध है। हिन्दी का दुर्भाग्य यह है कि दीर्घावधि तक अंग्रेजों के उपनिवेश रहने के कारण भारत में आज भी ज्ञान के समस्त अनुशासनों में अंग्रेजी का चर्चस्व या एकाधिकार व्याप्त है और जब तक ये रहेगा हिन्दी को रोजी–रोटी की भाषा बनाने में बाधाएँ आती रहेंगी। इधर जनसंचार प्रौद्योगिकी और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्रों में हिन्दी के माध्यम से अभिव्यक्ति के अनेक खिड़की, दरवाजे खुल रहे हैं व्यावसायिकता की दृष्टि से हिन्दी के लिए यह शुभ लक्षण हैं।

इस बात पर किसी भी राष्ट्रप्रेमी को अफसोस होता है कि हिन्दी अभी तक स्वतंत्र रूप से भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी है। राजभाषा के रूप में जो हिन्दी है उसका भी

सम्यक् रूप में प्रयोग नहीं होता। क्या यह विडंबना नहीं है कि केन्द्र सरकार का सारा कामकाज अंग्रेजी के माध्यम से होता है। केन्द्रीय कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका सभी में अंग्रेजी का बोलबाला है। हिन्दी के राष्ट्रीय भाषा के साथ अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनने की शक्ति है। जब अपने देश में हिन्दी को स्वतंत्र रूप से राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं मिल सका है तो उसके सारे गुण सम्पन्नता के बावजूद अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की बात थोड़ी कठिन लगती है। वैसे यू0एन0ओ0 में हिन्दी को स्थान पाने के लिए विश्व की महत्वपूर्ण भाषाओं के अनुवाद हिन्दी में करने होंगे, जिसके लिए डेढ़ अरब रुपये की आवश्यकता होगी। साथ ही 10 लाख शब्दों की अनुवाद के लिए आवश्यकता होगी।

ये दोनों बातें समस्याएँ नहीं पैदा कर सकतीं। यह सच है कि दुनिया के अनेक देशों में हिन्दी का प्रचार–प्रसार है किन्तु इसकी अधिकतर शक्तियाँ उन देशों के सरकार के हाथ में है। भारत के नेता तथा अधिकारी यदि दृढ़ संकल्प हो जाय तो यह काम आसानी से हो सकता है। प्राचीनकाल से हिन्दी देश के तीर्थ स्थानों एवं मन्दिरों में व्यवहृत भाषा है, किन्तु जब किसी भाषा के साथ रोजगार, स्वाभिमान, प्रेम, सम्मान और ज्ञान नहीं जुड़ता, तब उसकी स्थिति गरीब की जोरू जैसी हो जाती है। वैसे हिन्दी उतनी दयनीय स्थिति में नहीं है, जितनी कि उसके पद पर प्रतिष्ठित होने की आवश्यकता है किन्तु आशा को एक किरण दिखाई देती है। यदि हमारी सरकार धारा 370 को हटा सकती है, तो वह हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित भी करवा सकती है। इस दिशा में एक सकारात्मक प्रयास केन्द्रीय सरकार करने जा रही है कि हिन्दी की पढ़ाई सभी विषयों में होगी। अर्थात अब हिन्दी आत्मनिर्भरता की ओर अपने कदम बढ़ा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली–110002, सं0 2015 ई0।
2. डॉ0 मलिक मोहम्मद– राजभाषा हिन्दी, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली–1100030, सं0 1993 ई0।
3. आजकल, जनवरी–2016(प्रवासी भारतीय समाज, भाषा, साहित्य और संस्कृति–विमलेशकान्ति शर्मा)
4. जयशंकर प्रसाद– चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक, दृश्य छह, संजय बुक सेन्टर गोलघर वाराणसी, सं0 1989ई0
5. डॉ0 मलिक मोहम्मद– राजभाषा हिन्दी, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली–1100030, सं0 1993 ई0।
6. डॉ0 हरदेव बाहरी– हिन्दी भाषा,संस्करण 1994ई0, अभिव्यक्ति प्रकाशन, 847, विश्वविद्यालय मार्ग, इलाहाबाद
7. डॉ0 हरदेव बाहरी– शिक्षार्थी हिन्दी शब्दकोश, परिशिष्ट 1, राजपाल ऐण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली, सं0 1994ई0
8. आफताब आलम– द सण्डे इण्डिया, 30 मई 2010ई0
9. विनीत कुमार–नया ज्ञानोदय, मई 2010
10. प्रभाकर क्षेत्रिय– 'अन्यथा' जुलाई 2006
11. 'वागर्थ', दिसम्बर 2009
12. हिन्दी कैसे बने विश्वभाषा (लेख)– वेद प्रताप वैदिक वाक, अंक–02, वर्ष–2007
13. भूमण्डलीकरण, भारत की भाषा समस्या और डॉ0 लोहिया (लेख)– डॉ0 ब्रज कुमार पाण्डेय, वाक, अंक–03, वर्ष 2007

14. भाषा का वैश्वीकरण और वैश्वीकरण की भाषा (लेख)– डॉ0 अशोक केलकर, आलोचना, अंक–09, वर्ष 2002
15. वरिष्ठ साहित्यकार राजेन्द्र राव का कथन– एक साक्षात्कार
16. भाषा, भाषी, भाषिकी (लेख) डॉ0 उदय नारायण सिंह, बहुवचन, अंक–2, अप्रैल–जून, 2000 ई0
17. गाँधी और हिन्दी– सं0–राकेश पाण्डेय, प्र0–राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, सं0–2015
18. केरल में हिन्दी की स्थिति (लेख) ए0 अरविन्दाक्षन, वाक, अंक–02, वर्ष 2007
19. हिन्दी का प्रश्न हम हार चुके हैं (लेख)– परमानन्द श्रीवास्तव, वागर्थ, अंक–86
20. गाँधी और हिन्दी–सं0–राकेश पाण्डेय, प्र0–राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, सं0–2015
21. दैनिक जागरण, इटावा संस्करण, 11. 09. 2016,19. 11. 2018, 21. 02. 2019,14. 09. 2019,15. 09. 2019
22. अमर उजाला, इटावा संस्करण, 15. 09. 2019